International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 03 Issue 20
December 2016

प्राचीन भारतीय समाज व्यवस्था की विवेचना

शोध पर्यवेक्षक
lfork
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश

शोध छात्रा
Mk0 txiky eku
'kks/k Nk=k] bfrgkl foHkkx]
श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश

भारत के वर्तमान सामाजिक जीवन की तथा उसके गुण–दोषों की विवेचना बहुत व्यक्तियों द्वारा हुई है तथा होती रहती है, परन्तु भारतीय समाज–व्यवस्था का वैज्ञानिक रीति से अध्ययन इतने कम विद्वानों ने किया है कि आश्चर्य होता है[प]। इस कारण आगे दिये विचारों का समर्थन अधिकांशतः शास्त्रों के ही उदाहरणों के आधार पर है तथा केवल प्रास्ताविक विवेचना में ही जहाँ आवश्यक और सम्भव प्रतीत हुआ है वहीं कुछ विद्वानों के उदाहरण दिये गये हैं।

भारतीय समाज–रचना दर्शन पर आधारित है। इसीलिये धर्म के जितने भी ग्रन्थ है, सबमें इहलौकिक व्यवस्था के साथ–साथ पारलौकिक उन्नति का, ब्रह्म का तथा ब्रह्म–जीव एकता का वर्णन अन्य वेदों में भी उपलब्ध है। वेदों के अतिरिक्त प्रत्येक पुराण में भी सभी धर्म के वर्णन के साथ मोक्षधर्म का भी पूरा वर्णन किया है। स्मृतियों में मनुस्मृति का प्रारम्भ सृष्टि–उत्पत्ति से होता है और मध्य में सम्पूर्ण धर्मों का वर्णन करते हुए सबके अन्त में मोक्षधर्म का विवेचन किया गया है[पप]। हारीतस्मृति के विवरण की यही योजना है। ज्ञातवल्क्यस्मृति में सभी वर्णों और आश्रमों के धर्मों का वर्णन करने के पश्चात् अन्त में अध्यात्म–तत्व का वर्णन किया है। ऐसा ही दक्षस्मृति में भी है। इस तथ्य को डॉ. राधाकमल मुकर्जी ने स्तीकार किया है। वे कहते है कि ″जीवन की भारतीय योजना में सभी व्यक्तियों और उत्तरदायित्वों का निर्धारण अन्ततः दर्शन से ही होता है।, जिसमें आत्म–प्रकृति और परमात्मा के सम्बंधों का विवेचन है।″ राधाकृष्णन ने लिखा है ″हिन्दुओं के व्यवहार–नियमों में कामनाओं के क्षेत्र को

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 03 Issue 20
December 2016

अनन्तत्व की सम्भावना के साथ जोड़ दिया है। उसने इहलौकिक और पारलौकिक तत्त्वों को साथ–साथ जोड़ दिया है।" श्री रड्गस्वामी आयड्गर का कहना है "एक अमानवीय स्त्रोत से समाज–व्यवस्था का सनातन आधार प्राप्त होने के कारण समाज–व्यवस्था दार्शनिक के क्षेत्र के अन्तर्गत आ जाती है और दर्शनशास्त्र के लेखक स्मृतियों को अधिकृत मान कर उनके उदाहरण देते हैं जब कि धर्मशास्त्र के लेखक मानव–सम्बंधों और कर्तव्यों के आध्यात्मिक आधार का उल्लेख करते है। एक परमात्मवादी पद्धति में नैतिकता और दर्शन को पृथक् नहीं किया जा सकता[पपप]।"

भारतीय समाज–व्यवस्था दर्शन पर आधारित है, इसकासस अर्थ यह नहीं कि वह केवल एक आदर्श की ही वस्तु रही है तथा उसका व्यावहारिक उपयोग नहीं रहा। धर्मशास्त्रों ने अपनी प्रत्येक व्यवस्था के व्यवहार पर पूरा जोर दिया है और उसे पालन करने की आवश्यकता बतायी है। धर्मशास्त्रों ने श्रेष्ठ आदर्श स्थिति का वर्णन किया है, फिर भी व्यवहार की दृष्टि से जो उस आदर्श तक नहीं पहुंच सकते उनके लिये व्यवस्था की गयी है। इसी कारण चार वर्ण बनाये गये हैं, क्योंकि प्रत्येक वर्ण ब्राह्मण निर्धारित श्रेष्ठ जीवन का पालन नहीं कर सकता। ब्राह्मणों के लिये भी परिग्रह की अर्थात दान लेने की निन्दा की गयी है फिर भी ब्राह्मणों की जीविका चलती रहे, इसके लिये उनकी वृत्ति के तीन साधनों में दान भी एक साधन है। इस प्रकार आदर्श का ध्यान रखते हुए भी व्यावहारिकता को नष्ट किया गया है। धर्मशास्त्रों में यह व्यवस्था रखी गयी है कि प्रत्येक अपनी सवर्ण भार्या से ही विवाह करें और प्रतिलोम विवाह की तो बहुत निन्दा की गयी है परन्तु फिर भी प्रतिलोम सम्बंधों से उत्पन्न जातियों का वर्णन किया गया है[पअ] और उन्हें समाज में (चाहे छोटा ही क्यों न हो) स्थान दिया गया है। पिछले अध्याय में यह बताया गया है कि स्त्रियों के पुनर्विवाह का निषेध करने पर भी व्यावहारिक दृर्बलता को ध्यान में रख कर नियोग की अनुमति दी गयी है। राधाकृष्णन भारतीय दर्शन पर विचार करते हुए लिखते हैं "पश्चिम में दर्शन एक ऐसी वस्तु है जो कि दार्शनिकों के मस्तिष्क तक ही सीमित हैं। उसकी व्यावहारिक जीवन में कोई उपयोगिता नहीं है। भारत में दर्शन को व्यवहार में लाया गया है।" दर्शन और व्यवहार का इतना श्रेष्ठ समन्वय है कि एक

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 03 Issue 20
December 2016

ओर जहाँ आदर्शवाद अपने चरम रूप में दिखायी देता है, दूसरी ओर व्यावहारिकता भी उतनी उत्कक है। जब व्यक्ति के सामने निर्गुण ब्रह्म से एकता प्राप्त करने का लक्ष्य रखा जाता है, उस निर्गुण ब्रह्म से जो कि इन्द्रियों को आग्रह्य है और दृष्ट अनुभव से परे है, अथवा उस सम्पूर्ण विश्व के अन्दर के सभी जड़ और चेतन तत्त्वों की मूलभूत एकता को सामने रख कर उसके आधार पर जीवन में व्यवहार करने की बात की जाती है तो यह एक ऐसा आदर्शवाद है जो केवल कल्पना की ही बात प्रतीत होती है। जब कि संन्यासीस का और ब्राह्मण का ऐसा त्यागमय आदर्श सामने रखा जाता है जिसकी समता आज मिलना बहुत–ही दुर्लभ है, तो बेवह एक कोरा आदर्शवाद ही समझा जा सकता है। जब प्रत्येक गृहस्थ के दैनिक जीवन के लिये बहुत कड़ा अनुशासन निर्धारित किया गया है[अ] और उसके सम्पूर्ण दिन की बड़ी–बड़ी दिनचर्या बतायी गयी है तब यह विचार उठता है कि इस पर कभी व्यवहार भी किया जा सकता है अथवा नहीं ? परन्तु दूसरी ओर व्यावहारिकता भी इतनी अधिक है कि मनु का यह कथन कि ''न मांस खाने में दोष है, न मदिरा पीने में, न मैथुन में, क्योंकि यह प्राणियों की (स्वाभाविक) प्रवृति है,'' साधारण नैतिकता में विश्वास रखनेवाले व्यक्ति को अखर जाता है। राजधर्म में जब शत्रु के साथ व्यवहार करने के, अथवा राजपुत्रों को वश में रखने के, अथवा विभिन्न साधनों से धन प्राप्त करने के नियम बताये गये हैं, तब उन नियमों की अनैतिकता देख कर यह स्वाभाविक है कि साधारण व्यक्ति उन नियमों के प्रति हृदय में तुच्छ भावों को धारण करें। जब वेश्याओं के विषय में स्मृतिसकारों ने नियम दिये है जब उन स्मृतिकरों की समाज–व्यवस्था के प्रति निरादर का भाव उत्पन्न हो जाना बहुत ही स्वाभाविक है। यह सत्य है कि भारत ने ऐसी समाज–व्यवस्था बनायी जिसके द्वारा धीरे–धीरे एक आदर्श स्थिति तक पहुँचने का प्रयत्न किया, परन्तु यह भी सत्य है कि व्यावहारिक जीवन की सभी कमियाँ और आवश्यकताएँ भी स्वीकार की गयीं और व्यावहारिक जीवन में परिपूर्णता निर्माण करते हुए मनुष्य के दार्शनिक लक्ष्य को भी व्यावहारिक जीवन में परिपूर्णता निर्माण करते हुए मनुष्य के दार्शनिक लक्ष्य को भी व्यवहारिक स्वरूप देने का प्रयत्न किया गया[अप]।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 03 Issue 20
December 2016

जहाँ तक भारतीय दर्शन का प्रश्न है, भारत में छः दर्शन विख्यात हैं। परन्तु वह छः दर्शन भी परस्पर–विरोधी नहीं हैं। भारत का 'दर्शन' शब्द 'दृश्' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'देखना अतः दर्शन वह पद्धति है जिससे 'सत्य' का अथवा 'ब्रह्म' का साक्षात्कार किया जाये। इस दृष्टि से वह अंग्रेजी के Philosophy शब्द का पर्यायवाची नहीं हो सकता। मैक्समूलर जैमिनि की पूर्वमीमांसा को पश्चिमी दृष्टि से Philosophy नाम देने में हिचकता है क्योंकि उसमें वेद के कर्मकाण्ड–सम्बंधी मन्त्रों का एकीकरण करने का प्रयत्न है फिर भी भारतीय दृष्टि से वह दर्शन ही है, क्योंकि उसमें कर्मकाण्ड के मार्ग से मनुष्य को ब्रह्म तक पहुंचने का मार्ग दिखाया गया है। मैक्समूलर ने यह स्वीकार किया है कि हमारी Philosophy की धारणा भारतीय दर्शन की धारणा से भिन्न है। इस भेद के कारण जहाँ पश्चिम में दर्शन की विभिन्न पद्धतियाँ परस्पर–विरोधी हो सकती हैं, कम–से–कम सब स्वतन्त्र विचारधाराएँ रखती हैं वहां भारत में ऐसा नहीं है। भारत में सभी एक सत्य को देखने के विभिन्न प्रकार–मात्र हैं जिनमें मुलतः कोई भेद स्वीकार नहीं किया जाता है। विभिन्न दर्शनों के विषयों का विवेचन करने पर यह बात और भी स्पष्ट हो जायेगी। न्यायसूत्रों में तर्क के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति (मोक्ष–प्राप्ति) का साधन बताया गया है। इन सूत्रों का प्रारम्भ यहीं से किया गया है। कि निःश्रेयस् की प्राप्ति प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन आदि सोलह तत्त्वों के ज्ञान से होती है। इसमें आत्म का अस्तित्व सिद्ध करते हुए तथा आत्मा अनित्य है यह बताते हुए कर्मफल की प्राप्ति का कारण ईश्वर को बता कर ब्रह्म का अस्तित्व सिद्ध किया गया है। वैशेषिक में आधिभौतिक तत्त्वों का विवेचन है और इस सबके मूल में ब्रह्म है तथा इनकी विवेचना से मोक्ष ही मनुष्य के जीवन का लक्ष्य मूल में ब्रह्म है तथा इनकी विवेचना से मोक्ष ही मनुष्य के जीवन का लक्ष्य होना चाहिये यह दिग्दर्शित किया है। वैशेषिक सूत्रों में कणाद का कहना है कि "द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष समवाय, नामक पदार्थो के साधर्म्य और वैधमर्य का तत्त्वज्ञान धर्म–विशेष (वैशेषिक) से उत्पन्न होने के कारण निःश्रेयसकारी है[अपप]" और उसमें प्रारम्भ में धर्म को अभ्युदय तथा निःश्रेयसकारी बता कर इस सब धर्म के प्रमाण के रूप में वेद बताये गये हैं क्योंकि वे परमात्मा (ब्रह्म) के शब्द हैं। इतना ही नहीं इन सूत्रों में आत्मा की स्वीकृति है तथा यह कह कर कि इन्द्रियों के अनुभव

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 03 Issue 20
December 2016

सर्वगम्य होने के कारण इन्द्रियों तथा उनकी अनुभूत वस्तुओं से परे भी कुछ है, ब्रह्म को स्वीकार किया गया है। न्याय में बुद्धि के द्वारा तथा वैशेषिक में प्रत्यक्ष संसार के विवेचन से–अर्थात् दोनों पद्धतियों में भौतिक साधनों से–इस संसार से मुक्ति की विवेचन–अर्थात दोनों पद्धतियों में भौतिक साधनों से–इस संसार से मुक्ति की विवेचना की गयी है। सांख्य में पुरूष और प्रकृति तथा प्रकृति पर आधारित महत्त्व, अहंकार, पश्तमात्राएं, पंचमहाभूत, दस इन्द्रियां और मन, इन पच्चीस तत्त्वों का वर्णन है और यह बता कर कि पुरूष प्रकृति के चक्र में फँस कर अपना सत्य स्वरूप भूल जाता है और विविध दुःखों का अनुभव करता है। यह कहा है कि त्रिविध दुःखों से निवृत्ति अर्थात संसार से मुक्ति ही सर्वश्रेष्ठ पुरूषार्थ है। योग में योग–साधनों के द्वारा पुरूष और प्रकृति का भेद समझने का मार्ग दिखाया गया है। योगसूत्र के प्रारम्भ में योग की परिभाषा करते हुए कि यह चित्त की वृत्तियों का निरोध है बताया है कि इसमें व्यक्ति अपने मूल स्वरूप (ब्रह्म–प्राप्ति) में अवस्थित हो जाता है, तथा फिर योगसाधनों का वर्णन करके सबसे अन्तिम अध्याय में यह बताया है कि उससे मोक्ष कैसे प्राप्त होता है[अपपप]। पूर्णमीमांसा में श्रुति के कर्मकाण्डपरक मन्त्रों का विवेचन है और उनकी एकता सिद्ध की गयी है तथा स्पष्ट किया गया है कि कर्मकाण्ड से किस प्रकार ब्रह्म–प्राप्ति होती है। उसमें धर्म की जिज्ञासा प्रारम्भ करते हुए बताया है कि यह धर्म वह है जिसका, उचित होने के कारण, श्रुतियों द्वारा आदेश किया गया है और फिर कहा है, इन्द्रियों के वसतुओं के संयोग से बुद्धि धर्म (मोक्ष) को जानने का साधान नहीं है क्योंकि इससे केवल विद्यमान वस्तुओं का ही ज्ञान होता है। इसका अर्थ यह कि श्रुतियों द्वारा प्रतिपादित विधियों के आचरण से (जिसमें कर्मकाण्ड भी है) धर्म का–जिसका अर्थ यहाँ ब्रह्म है–ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यह भी बताया है कि श्रुति, स्मृति तथा शिष्टाचार सब उस एक ही धर्म का विवेचन करते है। सबसे अन्त में और सबका सिरमौर वेदान्त है जो उत्तरमीमांसा अथवा शारीहिर मींमासा के नाम से विख्यात है और जिसके द्वारा सांख्य के सिद्धान्तों को और एक कदम आगे बढ़ा कर ब्रह्म–पुरूष की एकता को तथा माया के भ्रम को सिद्ध किया गया है। इस प्रकार विभिन्न पद्धतियों से ब्रह्म की एकरूपता प्राप्त करने का मार्ग–प्रदर्शित किया गया है और यह सब

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 03 Issue 20
December 2016

दर्शन ब्रह्म–अनुभुति के एक–एक कदम ऊपर बढ़ते हुए मार्ग हैं–वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा, जिनमें वेदान्त सर्वश्रेष्ठ है। विज्ञानभिक्षु ने सांख्यसूत्रों की भूमिका में विभिन्न दर्शनों की एकता ही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। वह प्रारम्भ करता है कि वेद से तीन बातें ज्ञात होती हैं। 1. मनुष्य का लक्ष्य, 2. उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये आवश्यक ज्ञान और 3. आत्मा का स्वरूप । सांख्य का उद्देश्य भी श्रुति के आधारों पर समर्थित पुरूष और प्रकृति का भेद सिद्ध करना है। फिर वह कहता है कि न्याय और वैशेषिक का सांख्य से कोई मतभेद नहीं है यद्यपि न्याय और वैशेषिक पुरूष को सगुण प्रतिबिम्बत करते हैं और सांख्य पुरूष को निर्गुण बताता ह[पगै]। सगुण और निर्गुण का भेद केवल इसीलिये दिखायी देता है कि न्याय और वैशेषिक पुरूष को सगुण का भेद केवल इसीलिये दिखयी देता है कि न्याय और वेशेषिक, भोतिक ज्ञान को आधार मान कर चलते हैं और सांख्य कुछ ऊँचा तत्वाज्ञान प्रदर्शित करता है। सांख्य के अनुसार क्योंकि न्याय और वैशेषिक (भौतिक होने के कारण) पूर्ण तत्त्व पर नहीं पहूंच सकते और मनुष्य को सुख अनुभव करने वाला बताते है अतः वह ज्ञान के प्रथम पग के समान हैं और वह केवल यही सिद्ध करके शान्त हो जाते हैं कि आत्मा और शरीर एक नहीं पृथक–पृथक हैं तथा इससे आगे नहीं बढ़ते। यहां पर विज्ञानभिक्षु गीता का उद्धाहरण देता है कि "प्रकृति के गुणों से विभ्रमित पुरूष गुणों और कर्मों में ही लगे रहते हैं। ज्ञानी पुरूष इन अज्ञानी और मन्दबुद्धियों को अपने मार्ग से विचलित नक करे।" और फिर कहता है कि न्याय और वैशेषिक असत्य नहीं है अपितु अपूर्ण सत्य की ही प्रदर्शन करते हैं जब कि सांख्य उनकी तुलना में अधिक अधिक पूर्णसत्य का दिग्दर्शक है। परन्तू उनका (न्याय और वैशेषिक का) भिन्न ज्ञान देते है और सांख्य का विषय भिन्न है। इसी प्रकार आगे विज्ञानभिक्षु सांख्य का योग और वेदान्त से समन्वय करता है। यहां पर उसके अनुसार सांख्य अनीश्वरवादी नहीं है, वह तो किवल पुरूष और प्रकृति का भेद सिद्ध करने तक ही अपने को सीमित रखता है। इस कारण सांख्य का अपना पृथक क्षेत्र है। सांख्य के अनीश्वरवादी होने का विज्ञानभिक्षु यह भी कारण बताता है कि इसके द्वारा सांख्य, ईश्वर का जो सर्वसाधारण द्वारा समझा जाने वाला रूप है (जगत निर्माणकर्ता का और जिससे प्रात्मा प्रकृति का ही एक

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 03 Issue 20
December 2016

अंग सरीखा बन जाता है), उसको गलत सिद्ध करना चाहता है। सांख्य द्वारा पुरूषों की जो असीम संख्या बतायी गयी है, उसके विषय में विज्ञानभिक्षु का कहना है कि वेदान्त में तो इन पुरूषों और ब्रह्म की एकता अवश्य सिद्ध की गयी है परन्तु पुरूषों की असीम संख्या की अस्वीकृति कही नहीं है। इसीलिये वेदान्त यद्यपि सर्वोच्च सत्य सिखाता है परन्तु वह सांख्य के सिद्धान्तों को समाप्त नहीं करता और सांख्य के सिद्धान्तों को समाप्त नहीं करता और सांख्य के सिद्धान्त पृथक हैं[ग] जिनका वेदान्त से कोई मतभेद नहीं है। इस प्रकार विज्ञानभिक्षु सिद्ध करना चाहता है कि इन छः दर्शनों में काई मतभेद नहीं है अपितु एकता है और वह विभिन्न प्राकर के ज्ञान द्वारा ब्रह्म तक पहूंचने के मार्ग है। अन्तर केवल इतना ही है कि उनके विषय पृथक–पृथक हैं और कोई ऊँचा ज्ञान देने वाला है तथा कोई नीचे स्तर तक का ही ज्ञान देता है। परन्तु हैं सब सत्य और सबकी मिल कर पूर्ण एकता है। मैक्समूलर का इस सम्बंध में अपनी भारतीय दर्शन की पुस्तक के अन्त में निष्कर्ष है कि "मै यह अस्वीकार नहीं कर सकता कि विभिन्न दर्शनों की विभिन्नता के पीछे एक प्रकार की एकता खोजने का जो प्रयत्न किया गया है वह ठीक है क्योंकि प्रत्येक (दर्शन) सर्वोच्च और अन्तिम सत्य के मार्ग में एक कदम है। इसको ज्ञान लेने के बाद यह समझना सरल है कि इन विभिन्न दर्शनों के अनुयायिों ने, जो हमें महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर एक–दूसरे के प्रत्यक्ष विरोधी दिखायी पड़ते है, वेद के साथ जिसका धार्मिक, दार्शनिक और नैतिक प्रश्नों पर सर्वोच्च अधिकार माना जाता है–किस प्रकार अपनी एकता बनाये रखी है[गप]।" पृष्ठ पर वह कहता है "ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में दार्शनिक एक साथ ही सांख्य का भी अनुयायी हो सकता था और वेदान्त का भी, यदि वह केवल यही समझ लेता कि यद्यपि दोनों भिन्न मार्गो से जाते हैं परन्तु उन्होंने प्रारम्भ एक ही स्थान से किया है और वह एक ही लक्ष्य की ओर बढ़ रहे है। यदि इसे ऐतिहासिक भावना से स्वीकार कर लिया जाये ंतो इससे कोई हानि नहीं हो सकती।" समाज–व्यवस्था का उद्देश्य समाज का सुव्यवस्थित, सुसंधिट, सुखी तथा समन्वयात्मक जीवन भी निर्माण करना था और जीवन को चार भागों में बांट कर उनकी योजना तथा समाज को विभिन्न कार्यों के अनुसार कई वर्गों में विभाजित कर उनकी व्यवस्था के उपरोक्त स्वरूप का तथा आध्यात्मिक

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 03 Issue 20
December 2016

लक्ष्य से उसके समन्वय का वर्णन तो आगे किया जायेगा परन्तु इसके पूर्व भारतीय संस्कृति के सिद्धान्तों का भी–जिन पर सम्पूर्ण समाज–व्यवस्था आधारित थी–विश्लेषण आवश्यक होगा।

---

i पी.वी. काणें, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग–1, पृ. 18–32.

ii ए.ए.मंकडोनेल, हिस्ट्री ऑफ संस्कृति लिटरेचर, पृ. 196.

iii वी, भाग–2, पृ. 200–203.

iv एस.,राधाकृष्णन्, हिन्दु व्यू ऑफ लाइफ ऐकांडिग, पृ. 24.

v एस.,राधाकृष्णन्, वही, पृ. 25.

vi एस.,राधाकृष्णन्, वही, पृ. 28.

vii कौटिलय, अर्थशास्त्र, अधिकरण, 13, पृ. 115.

viii एस.,राधाकृष्णन्, इण्डियन फिलॉसोफी, भाग–1, पृ. 147.

ix वही, भाग–1, पृ. 149

x ऋग्वेद, 10/129/ 1–2

xi एस., राधाकृष्णन्, इण्डियन फिलॉसोफी, भाग–2, पृ. 19.